रामकुमार

बँधे-रुँधे यथार्थ के पार कला

प्रयाग शुक्ल

रामकुमार (1924-2018) की कहानियों और चित्रकृतियों के रचे जाने की यात्रा लम्बी रही है। और इन दोनों ही माध्यमों में उन्होंने जो कृतियाँ रची हैं, वे अप्रतिम हैं, संख्या में बड़ी हैं। पर, वे हम पर कोई संख्या-बोझ नहीं डालतीं। जिस कृति से भी हम मिलते हैं, वह हमसे आत्मीय और धीर ढंग से मिलती है, किसी 'जल्दी' का बोध नहीं कराती। न उसमें रचे जाने की कोई 'जल्दी' है, न अपने को 'प्रकट' करने की जल्दी! 'मुखर' नहीं हैं। चुपचाप बतियाती हैं। कहती बहुत कुछ हैं, अगर इस 'शोर' भरे समय में उस 'बहुत कुछ' को हम सुनना चाहें। उन्होंने जो कुछ रचा बड़ी तल्लीनता और संलग्नता से रचा है। इस रचे जाने में विचार हैं। भाव हैं। प्रतीतियाँ हैं। स्मृतियाँ हैं। सोच की एक पूरी दुनिया है। इन सबका आपस में एक गुँथापन है। इस 'गुँथेपन' की अपनी शक्ति है। चुम्बकीय शक्ति। वह हमें अपनी ओर खींचती है। और, जो कुछ उनकी कृतियों में है, वह सब मानो हमारे भीतर प्रवेश करा देती है, तत्काल। हम कुछ मुग्ध-चकित उसे देखते-सुनते हैं।

I

उनकी कहानियों पर कम लिखा गया है। चित्रकृतियों पर ज़रूर बहुत सारी चीज़ें उपलब्ध हैं। इनमें सबसे अधिक प्रभावित करती हैं कला-समीक्षक रिचर्ड बार्थोलोमिव की समीक्षाएँ और रामकुमार की कला पर लिखी गयी अन्य चीज़ें। अच्छा है कि अब ये सारी चीज़ें *रिचर्ड बार्थोलोमिव : द आर्ट क्रिटिक* पुस्तक में संकलित हो गयी हैं। रिचर्ड द्वारा खींची गयी तस्वीरों की भी एक पुस्तक है, *क्रिटिक्स आई,* जिसमें रामकुमार के भी कुछ छाया-चित्र हैं। इनमें भी रिचर्ड ने रामकुमार की भावप्रवणता को बहुत अच्छी तरह पकड़ा है।

हमने रिचर्ड की बात शुरू में इसलिए भी की है कि बिना उनकी लिखी हुई चीज़ों का संज्ञान लिए हुए, रामकुमार पर पूरी बात नहीं की जा सकती। दोनों लगभग समवयसी थे। मित्र भी। रिचर्ड कला पर तो लिखते ही थे, स्वयं चित्र-रचना भी करते थे। फ़ोटोग्राफ़र भी थे। दिल्ली में ही रहते थे। और एक समय वह भी था जब दोनों ने गर्मियों की 'छुट्टियाँ' रानीखेत में साथ-साथ बिताई थीं। मैं

स्वयं जब भी रिचर्ड के साथ होता था, हमारे बीच रामकुमार भी 'अदृश्य' ढंग से आ उपस्थित होते थे। ऐसा नहीं कि हम दोनों रामकुमार की कला-कथा पर बात करते थे। उनका ज़िक्र तो कभी-कभार ही होता था। और रिचर्ड बातचीत के वक़्त यों भी किसी की कला पर कोई लम्बी टिप्पणी नहीं करते थे—वह तो वे करते थे लिखकर ही। पर, मुझे उनके साथ होते ही, रामकुमार की भी 'याद' हो आती थी।

रिचर्ड ने लिखा है :

> 1956 में ग्रीस की एक यात्रा ने, और बाद के वर्षों में संजौली (शिमला) में बिताई गयी दो गर्मियों ने— जब राम भीड़-भाड़ और शोर वाली जगहों से दूर थे— उन्हें सैरों (लैंडस्केप्स) के बीच ला दिया। रामकुमार ने प्रकृति के 'स्थायी' रूप-आकारों को बड़ी आत्मीयता से जाना। उन पर ध्यानमग्नता की हद तक सोचा-विचारा और उनकी कला मनुष्य की प्रत्यक्ष स्थिति-परिस्थिति (का संज्ञान लेते हुए भी) 'पार' चली गयी। किसी बँधे-रुँधे यथार्थ के पार। वह उस भूमि, और उन दृश्यावलियों से जुड़ गये, जहाँ साधारण-जन रहते और जीवन-यापन करते थे, और जिस जीवन-यापन से स्वयं जीवनी-शक्ति का बोध होता था।
>
> 1960 के आरम्भिक वर्षों में बनारस में रामकुमार ने जो कुछ देखा, उन तत्त्वों को अपनी कला में जगह दी। बनारस में सदियों से आने वाले तीर्थयात्रियों, और पीढ़ियों के भाव, समय के साथ उनका गुज़र जाना— इस सबमें राम को कई अनुगूँजें सुनाई पड़ीं— स्मृतियों का पूरा एक दृश्य-अदृश्य भण्डार। चित्रों में उभर आयीं जल और आकाश की छवियाँ, पृष्ठभूमि में दीखे शहर के सांकेतिक रूप। जल और आकाश की छवियाँ किसी 'अनंत' की सूचना थीं— सब कुछ को घेर लेने वाली। (पृष्ठ 110-111 से, अंग्रेज़ी से हिंदी में भावानुवाद)

जो अंश हमने यहाँ उद्धृत किये हैं, उनके आगे-पीछे भी कुछ और अंश हैं जिनमें रिचर्ड ने शुरू के रामकुमार के चित्रों में पसरी उदासी और अवसादपूर्ण आकृतियों के बारे में लिखने के साथ वाराणसी की यात्राओं के बाद रामकुमार के कश्मीर-प्रवास को भी याद किया है। कुल मिला कर यह कि रिचर्ड ने रामकुमार की कला के हर दौर को रेखांकित किया है, उस दौर की विशेषताओं के साथ। और इनका एक सम्यक परिचय देने के साथ, रामकुमार के कला-गुणों को, उनके कथ्य को उभारा है, उनके सरोकारों के साथ। उन सूक्ष्म टिप्पणियों और कला-कथनों की बात हम बाद में भी करेंगे।

II

रामकुमार से मेरा परिचय 1962 में हुआ था। तब मैं कलकत्ता में था। 22 वर्ष का था। रामकुमार मुझसे 16 वर्ष बड़े थे। मैं 1957-58 से कविताएँ-कहानियाँ लिखने लगा था जो *कहानी, कृति, कल्पना* आदि पत्रिकाओं में प्रकाशित हुई थीं। रामकुमार को तब हम एक प्रमुख और प्रिय कथाकार के रूप में ही अधिक जानते थे। वे एक महत्त्वपूर्ण कलाकार भी हैं इसका भान भी था, क्योंकि उनकी *यूरोप के स्केच* पुस्तक हम पढ़ चुके थे। 1962 में एक कला-सेमिनार के सिलसिले में जब वे कलकत्ता आ रहे थे, उन्होंने मुझे एक पोस्टकार्ड लिखा था कि कलकत्ता में तुमसे भेंट करना चाहता हूँ। मेरी ख़ुशी का ठिकाना नहीं था। एक बड़ा और महत्त्वपूर्ण कथाकार-चित्रकार मुझ जैसे युवा से मिलना चाहता है, यह बात चमत्कारिक लगी थी। उनकी विनम्रता और सदाशयता का परिचय तो दे ही रही थी। मैं उनके साथ कलकत्ता में कोई सप्ताह भर घूमा फिरा था। और उन्हीं के साथ पहली बार कलकत्ता के कला-जगत से परिचय प्राप्त किया था। फिर 1964 के अगस्त महीने में मैं दिल्ली रहने-बसने के इरादे से आ गया। उस दिल्ली में, जिसमें जैनेंद्र और अज्ञेय थे। इब्राहिम अल्काज़ी थे। मक़बूल फ़िदा हुसेन और रविशंकर थे। यामिनी कृष्णमूर्ति थीं। कृष्णा सोबती थीं। मोहन राकेश थे। नयी गतिविधियाँ थीं। सभी कला-माध्यमों में। कॉफ़ी हाउस, टी हाउस थे। अकादमियाँ थीं। सप्रू हाउस था। आइफ़ैक्स था। त्रिवेणी कला संगम था। रवींद्र भवन तो था ही। मेरे मित्र थे महेंद्र भल्ला,

कमलेश जैसे। *दिनमान* निकलने वाला था। रामकुमार थे।

एक दिन रामकुमार को मालूम हुआ कि मैं रहने का कोई ठीक-ठिकाना खोज नहीं पाया हूँ। यहाँ-वहाँ, विभिन्न इलाक़ों में, कभी किसी के यहाँ रह रहा हूँ, कभी किसी के यहाँ। उन्होंने कहा, जब तक तुम्हें कमरा नहीं मिल जाता, तुम मेरे स्टूडियो (गोल मार्केट) में रह सकते हो। मैं सुबह कोई नौ बजे आता हूँ, फिर लगभग एक बजे दोपहर घर (करोलबाग़) चला जाता हूँ। उन्होंने सचमुच एक चाभी स्टूडियो की मुझे सौंप दी। मैं वहाँ तीन महीने रहा। उनसे मिलने हुसेन, तैयब मेहता, कृष्ण खन्ना आदि आते थे। आते थे पत्रकार प्राण चोपड़ा, और विदेश सेवा के युवा अधिकारी सलमान हैदर जैसे लोग। सलमान हैदर अनंतर भारत के विदेश सचिव बने। रामकुमार के चित्र भी उन्होंने तब ख़रीदे थे। उनकी पत्नी कुसुम भी आती थीं, जो थियेटर से जुड़ी थीं। ज़ाहिर है रामकुमार की छवि दिल्ली (और देश) में एक ऐसे कलाकार की बन चुकी थी, जो एक 'बुद्धिजीवी' भी था।

रामकुमार चालीस-पचास के दशक में कम्युनिस्ट आंदोलन से, वामपंथी विचारधारा से जुड़े थे। और पचास के दशक में जब पेरिस गये थे तो वहाँ भी उनका यह जुड़ाव बना हुआ था। और वे वहाँ पॉल एलुआर और लुई अरागां जैसे ख्यातिप्राप्त लोगों के सम्पर्क में रहे थे। उनकी और उनके छोटे भाई निर्मल वर्मा, हिंदी के ख्यातनाम लेखक-चिंतक, दोनों का ही यह साम्यवादी रुझान इनके रचनात्मक जीवन के आरम्भिक वर्षों से था। अंततः निर्मल वर्मा का साम्यवादी विचार सरणियों और कार्यपद्धतियों से मोहभंग हुआ, और जब प्राग में सोवियत टैंक पहुँचे तो निर्मल ने अपने मोहभंग की बात स्वयं लिखी थी। और, उनका प्रवेश एक नयी तरह की चिंतन-सरणी में हुआ, जिसके बारे में हिंदी के सुधी पाठक अच्छी तरह जानते हैं। निर्मल पर अनंतर महात्मा गाँधी, जयप्रकाश नारायण, लोहिया, और रमण महर्षि के विचारों की छाप गहरी हुई। रामकुमार ने साम्यवाद से अपने किसी मोहभंग की बात न तो लिखी, न बताई, पर, वे उसकी ओर किसी सक्रिय ढंग से तो नहीं ही पलटे। कथाओं और चित्रों की रचना में अपनी तरह से संलग्न रहे फिर कहानियाँ भी कुछ पीछे छूटीं, चित्र-संसार ने ही उन्हें छा लिया। और वाराणसी की सम्भवतः पहली ही यात्रा, जो उन्होंने 1960 में प्रेमचंद के बड़े बेटे श्रीपत राय और हुसेन के आग्रह पर की थी, उसने उनकी दुनिया को, सोच को, पूरी तरह बदल डाला।

रामकुमार चालीस-पचास के दशक में कम्युनिस्ट आंदोलन से, वामपंथी विचारधारा से जुड़े थे। और पचास के दशक में जब पेरिस गये थे तो वहाँ भी उनका यह जुड़ाव बना हुआ था। और वे वहाँ पॉल एलुआर और लुई अरागां जैसे ख्यातिप्राप्त लोगों के सम्पर्क में रहे थे। उनकी और उनके छोटे भाई निर्मल वर्मा, हिंदी के ख्यातनाम लेखक-चिंतक, दोनों का ही यह साम्यवादी रुझान इनके रचनात्मक जीवन के आरम्भिक वर्षों से था। अंततः निर्मल वर्मा का साम्यवादी विचार सरणियों और कार्यपद्धतियों से मोहभंग हुआ, और जब प्राग में सोवियत टैंक पहुँचे तो निर्मल ने अपने मोहभंग की बात स्वयं लिखी थी।

III

2005 में जब मैंने *कल्पना काशी अंक* का सम्पादन किया, तो रामकुमार ने मेरे आग्रह पर आवरण के लिए एक काशी-चित्र तो दिया ही, 'वाराणसी : एक यात्रा' शीर्षक से एक लेख भी लिखा। सम्भवतः पहली बार, अपनी कला और वाराणसी के संबंध पर कुछ विस्तार से। अब इसका एक अंग्रेज़ी अनुवाद भी उपलब्ध होने जा रहा है।

इसमें रामकुमार लिखते हैं :

> लगभग 40 वर्ष पूर्व जब एक दिन हुसेन (मक़बूल फ़िदा हुसेन) ने मेरे सामने यह प्रस्ताव रखा कि हम दोनों बनारस के स्केच बनाने के उद्देश्य से कुछ दिनों के लिए वहाँ जाएँ, तो मैंने सहर्ष स्वीकृति

बनारस : बिना शीर्षक

दे दी। वह पहला और अंतिम अवसर था कि किसी नये शहर को चित्रित करने के उद्देश्य से हम गये हों। इसमें श्रीपत रायजी का भी सक्रिय योगदान रहा था, क्योंकि दिल्ली से हम दोनों पहले इलाहाबाद गये और शायद दो दिन श्रीपतजी के घर पर रहे। फिर उन्हीं के साथ उनकी कार में हम बनारस गये। वह सर्दियों की एक शाम थी। ख़ाली-ख़ाली सी सड़कें, सड़कों पर लगी धुँधली बत्तियाँ, गलियों में घूमते हुए लावारिस कुत्ते— पहला अनुभव काफ़ी निराशाजनक रहा। गौदोलिया में ही श्रीपतजी के बड़े-से मकान के एक कमरे में हम तीनों रुक गये और अगले दिन की प्रतीक्षा करने लगे। जब बनारस को सुबह की रोशनी में देखेंगे।

पहला परिचय ही इतना वशीभूत करने वाला, बहुत दबाव से भरा, विस्मयकारी था कि उसे समझने के लिए कम-से कम-कुछ दिनों का समय ज़रूरी था, लेकिन जिस स्केचबुक को साथ में लाए थे उसके पन्नों पर अपने प्रभावों को चित्रित करने की चिंता भी थी। अकेले घाटों का चक्कर लगाते समय कितनी ही पुरानी स्मृतियाँ मन को घेरने लगती थीं। शिमला में, स्कूल में पढ़े शरत के उपन्यासों में कई बार काशीवास का ज़िक्र पढ़ा था जिसकी अमिट छाप अब भी बनी हुई थी, सत्यजित राय की फ़िल्म *अपराजिता* में वाराणसी में घटी दुर्घटनाएँ और अब वाराणसी सामने था— गंगा का तट, घाटों की सीढ़ियाँ, जो भीतर शहर की अँधेरी सुरंगों में खो जाती थीं, सर्दियों की उजली धूप और अँधेरे में घूमती परछाइयाँ। ...

इसके बाद तो जब कभी मौक़ा मिला निकल जाता ... कभी-कभी बहुत मूर्त आकारों में वाराणसी की अदृश्य आत्मा को, शहर के भीतर बिखरी अँधेरी गलियों और मंदिरों के अंदर सैकड़ों वर्षों से लोगों की साधना, कुछ पा लेने की कोशिश, मुक्त हो जाने की तपस्या का आभास देने की केवल कोशिश की ...।

इसी लेख में रामकुमार ने शायद पहली बार एक खुलासा और किया :

दिल्ली के एक मित्र ने बनारस की एक सांस्कृतिक पुस्तिका निकालने की योजना बनाई और मुझसे सामग्री एकत्रित करने का अनुरोध किया जिसे मैंने सहर्ष स्वीकार कर लिया। ... इस अवसर पर लगभग 15 दिन मैंने व्यतीत किये। इस दौरान बहुत से विचित्र अनुभव हुए। शहर की गलियों में पते पूछता हुआ मैं किसी से भेंट करने के लिए जा पहुँचता और प्रश्न पूछने लगता। इस प्रकार से बिस्मिल्ला खाँ, रसूलन बाई, गिरिजा देवी, नंदलाल आदि संगीतकारों से बातचीत करने का अवसर मिला। कभी दालमण्डी, कभी कबीर चौरा और कभी असी घाट के इलाक़ों में घूमना पड़ा। आश्चर्य

से सोचता रहा कि भारत के महत्त्वपूर्ण संगीतकारों, लेखकों और नर्तकों का वाराणसी के साथ जितना घनिष्ठ संबंध रहा, वह हमारे दूसरे किसी शहर के साथ नहीं हुआ। ... रसूलन बाई से दालमण्डी में एक पुरानी जर्जर हवेली की तीसरी मंज़िल में खड़े-खड़े जब मैंने उनके जन्म दिन के बारे में पूछा तो वे ठहाका मारकर ज़ोर ज़ोर से हँसने लगीं— 'अरे, बेटा, कौन जानता है, हम कब पैदा हुए ... ।' और उनका संगीत मेरे कानों में गूँजता रहा— वैसा ही ठोस, शुद्ध और पवित्र संगीत जैसी उनकी आवाज़ थी।

उन दिनों बनारस का प्रभाव इस तरह से मन और दिमाग़ पर छाया हुआ था कि दिल्ली के स्टूडियो में बैठकर ख़ाली कैनवस पर जब चित्र बनाना शुरू करता तो अधिकतर बनारस के घाट, मंदिर, गंगा के जल का विस्तार, तट पर लगी नावें—उभर कर आ जाते और मैं उस प्रवाह को रोक नहीं सकता था। जापानी स्याही और मोम के साथ काग़ज़ पर बनारस के अनगिनत चित्र बनाए...। (पृ. 59-60)

रामकुमार के चित्रों की व्याख्या आसान नहीं है क्योंकि वहाँ 'बोध' पर ही ज़ोर है, उसके खण्डन-विखण्डन पर नहीं! लेकिन इतना तो निश्चयपूर्वक कहा ही जा सकता है कि रामकुमार की मानवीय संवेदना, और जीवन-मृत्यु के सवालों से घिरे, जीवन-मात्र के प्रति एक करुणा, उसमें है। और है, पर्वतों, जलधाराओं, झंझावातों, शांत प्रवाहों, चट्टानों, क्षितिज आदि का एक ऐसा 'दृश्यालेख' जहाँ प्रकृति और मनुष्य मन की प्रतीतियाँ आपस में टकरातीं, मिलतीं, संयोजित होती हैं...

'बनारस की अदृश्य आत्मा' में जिस शुद्ध और पवित्र को रामकुमार ने खोजा/अनुभव किया, उसे एक सौंदर्यशील ढंग से अपने चित्रों में उभारा। प्रकृति के सैरों और वाराणसी के घर-घाटों के प्रसंग से रामकुमार की कला में नये रंग उभरे। शुरू के धूसर-स्याह या माटीले से रंगों की जगह, नील जल धारा, नील आकाश, ललछौंह, भूरे, इमारती ढाँचे, कभी-कभी हरियर वृक्ष आदि उभरते चले गये ... इनमें एक 'भारहीनता' का बोध है, ठोस— उस को परे सरका दिया गया है ... यह वाराणसी के प्रसंग से एक मनचाही वाराणसी भी है... रूपांतरित।'

रामकुमार के चित्रों की व्याख्या आसान नहीं है क्योंकि वहाँ 'बोध' पर ही ज़ोर है, उसके खण्डन-विखण्डन पर नहीं! लेकिन इतना तो निश्चयपूर्वक कहा ही जा सकता है कि रामकुमार की मानवीय संवेदना, और जीवन-मृत्यु के सवालों से घिरे, जीवन-मात्र के प्रति एक करुणा, उसमें है। और है, पर्वतों, जलधाराओं, झंझावातों, शांत प्रवाहों, चट्टानों, क्षितिज आदि का एक ऐसा 'दृश्यालेख' जहाँ प्रकृति और मनुष्य मन की प्रतीतियाँ आपस में टकरातीं, मिलतीं, संयोजित होती हैं, और कलाकार मन का एक ऐसा अंतरंग रचती हैं, जो प्रिय हो उठता है। उनके चित्र एक 'सांत्वना' ही देते हैं। उनके यहाँ आलोड़न है, पर, एक धीरता भी है। गहरी धीरता।

IV

रिचर्ड बार्थोलोमिव : द आर्ट क्रिटिक के पृष्ठ 135 पर 'रामकुमार' शीर्षक से लिखा हुआ एक लेख संकलित है, जो 1961 में 'कुणिका' गैलरी में हुई रामकुमार की प्रदर्शनी के लिए लिखा गया था। इतने वर्षों बाद भी यह लेख रामकुमार से परिचित कराने के लिए पर्याप्त है : 'रामकुमार इन दिनों रानीखेत में हैं। मैं जानता हूँ कि इस समय या तो वे किसी कैनवास के सामने होंगे या किताब के, या अपने लिए चुन लिए गये किसी एकांत कोने में, या वह अपनी अँगुलियों से मित्रों को साफ़ सुथरी लिखावट से चिट्ठी लिख रहे होंगे या फिर अपने पाठकों के लिए कोई चीज़। वह खरे व्यक्ति हैं और गम्भीर। अगर वह इनमें से कुछ भी नहीं कर रहे होंगे तो फिर किसी से संवेगपूर्ण बातचीत कर रहे होंगे,
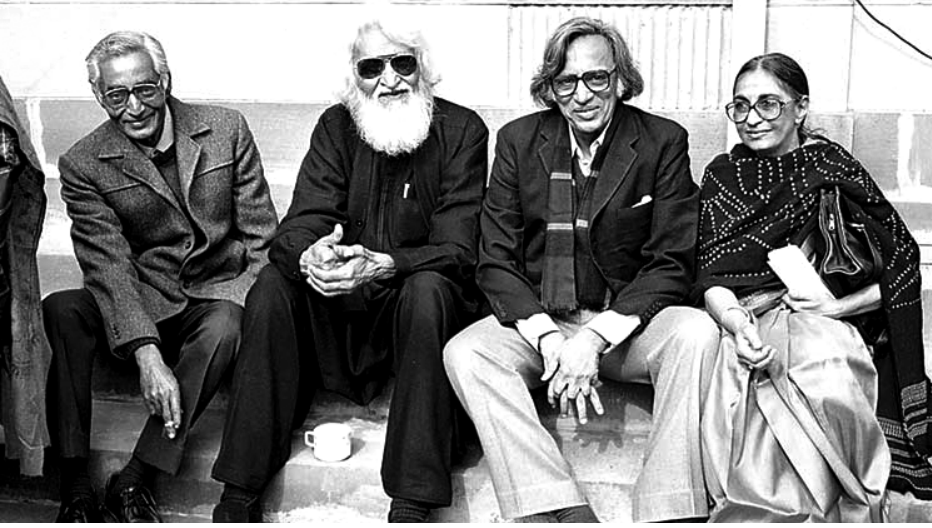
रामकुमार 1993 में मक़बूल फ़िदा हुसेन, तैयब मेहता और उनकी पत्नी सक़ीना मेहता के साथ

तन्मयता से, धीरता से।' मैंने भी तो रामकुमार को इन्हीं रूपों में देखा-जाना था, जब 1964 में उनके स्टूडियो में रहा था— तीन महीने, और अनंतर भी इन्हीं रूपों में जानता रहा।

रिचर्ड ने आगे लिखा है : 'उनके चित्रों की विषय-वस्तु संश्लिष्ट है, पर, उनकी शैली अपने आप में सरल है। बड़ी विषय वस्तु को अभिजात ढंग से सँवारा गया है सरलता के साथ।' हाँ, रामकुमार में बहुत अच्छे अर्थों में एक अभिजात और कुलीन परिष्कार है। वह सुसंस्कृत व्यक्ति और कलाकार थे। सादे पर गहरे। रिचर्ड ने इस लेख में रामकुमार की कला को, काव्य-परिसर से भी जोड़ा है। कला में, कविता जैसी उड़ान को रेखांकित किया है। रामकुमार के रंगों पर सोचा है। कहा है कि उनका काम एक 'मास्टर' (उस्ताद) का काम है, और अंत में उनके एक चित्र को शब्दों में वर्णित किया है, जिसका भावानुवाद यहाँ प्रस्तुत है :

> 'बनारस-2' शीर्षक चित्र, एक मास्टर का लैण्डस्केप लगता है : समूची 'स्थानीयता' (आंचलिकता) को रंगों की शर्तों पर रूपांतरित कर दिया गया है। रामकुमार के यहाँ, 'रंग की शर्तें', 'रंग के जादू' सरीखी हैं। ऊपर से जब आप नीचे की ओर आते हैं (चित्र में), मंदिर तक, तब बाईं ओर एक उजड़ा-सा वृक्ष है, स्मृति के आईने का प्रतिबिंब-सा लिए हुए। एक पुल के निकट एक टेलीग्राफ़ खम्भा जैसे-तैसे खड़ा है। पुल एक नहर के ऊपर है, और फिर चित्र-गति तेज़ी से नदी की ओर बढ़ती है, चमत्कारी, विमुग्ध परछाइयों के साथ।

हाँ, वाराणसी 1961 तक रामकुमार के चित्रों में एक चमत्कारी परिवर्तन घटित कर चुकी थी। याद करने लायक़ बात यहाँ यह है कि 'वाराणसी', उनके सैरों में, बाद के वाराणसी चित्रों में भी एक 'बीज-मंत्र' की तरह मौजूद रही। उनके चित्र कई प्रसंगों में रूपांतरित होते रहे, विशेष रूप से, उनके यात्रा प्रसंगों से, मसलन लद्दाख और न्यूजीलैण्ड की यात्राओं ने उनके रंगों में एक नया निर्मल-सौंदर्य भरा, पर, कुल मिलाकर जो पवित्रता-बोध वाराणसी ने जगाया था, वह रामकुमार की कला में बना ही रहा। और कई बार पुराने रूप, रूपक, रूपाकार उनकी कला में एक नयी निर्मलता के साथ प्रकट होते रहे। सत्तर के दशक से जो अमूर्तन का दौर अपने चरम पर रहा, उसमें बीच-बीच में उनके पुराने चित्रों की कुछ 'स्मृतियाँ' भी मानो चली आयीं। पर, पिछले डेढ़-दो दशक से तो चित्रों में आकृतियाँ भी उभरी, घर-घाट भी उभरे, वृक्ष उभरे, और कभी-कभी टूटे-अधटूटे से कुछ ढाँचे भी। खँडहरों जैसे रूपाकार भी। ये सब वाहक थे किन्हीं आंतरिक प्रतीतियों के। रिचर्ड ने भी लक्ष्य किया

था, औरों ने भी, कि वाराणसी वाले दौर के बाद, अपने लैंडस्केप्स में रामकुमार मानो चीज़ों को दूर से, और दूर तक देख रहे थे : एक 'विहंगम' दृष्टि से भी। दरअसल रामकुमार को ग़ैर-ज़रूरी ढंग से उलझा लेने वाली चीज़ों से परेशानी होती थी, ऐसी कोई भी चीज़ जो 'दृष्टि' को संकुचित कर दे, फिर वह चाहे बातचीत हो, या कोई दृश्य, उन्हें अच्छा नहीं लगता था। इसका यह अर्थ नहीं कि गलियों-सड़कों-बाज़ारों के जीवन से उन्हें कोई विरक्ति थी। वाराणसी की गलियों में वह विचरे ही, और कलकत्ता की गलियों-सड़कों से भी उन्हें एक लगाव-सा था। जहाँ भी प्रीतिकर, आंतरिक, आत्मीय 'जीवन- तत्त्व' उन्हें मिलता था, ग्रहण करते थे। विरक्ति थी उन्हें तो चकाचौंध पैदा करने वाली चीज़ों से। जिन लोगों को उनके घर के बाहर के नामपटों की याद है, वे जानते हैं कि बरसों-बरस वे धूल-धूप-बारिश में अपने ही एक 'खँडहर'-सा बन जाते थे, पर, उन्हें बदला नहीं जाता था। सुरुचिपूर्ण सादा पहनावा, (जिसके रंग ज़रूर 'चुने' हुए होते थे) सादा खान-पान सादा रहन-सहन ही उन्हें और संगीतप्रेमी पत्नी विमला को पसंद था।

V

रामकुमार कथाकार थे। दो उपन्यास भी उनके हैं, *देर सबेर* और *घर बने घर टूटे*। कहानी संग्रह कोई एक दर्जन, *एक लम्बा रास्ता, हुस्नाबीवी और अन्य कहानियाँ, झींगुरों के स्वर,* और *समुद्र* जैसे। जब मध्यवर्ग की स्त्री, कामकाज के लिए बाहर निकल रही थी, पढ़ लिख कर। अपने रास्ते, और अपना जीवन-साथी स्वयं चुनना चाह रही थी—अपनी मित्र मण्डली भी— उस 'मोड़' पर रामकुमार ने उसके कई रूप उभारे, अत्यंत संवेदित ढंग से। उनकी कहानियों में एकांतिक रूप से, पारिवारिक संबंधों में पैदा होने वाली चिंताएँ, और आशंकाएँ व्यक्त हुई हैं। अकेलेपन की भी कई कथाएँ हैं। मर्मभरी। उनमें ऋतुओं और जगहों के सूक्ष्म विवरण हैं। कुल मिलाकर वे हमें घेर लेती है गद्य सहज शब्द-सुरुचि से भरा हुआ है।

उनके लेखक-कलाकार का एक पक्ष यह भी रहा है कि उन्होंने *कल्पना, कृति, कहानी* जैसी पत्रिकाओं को गहरा सहयोग-समर्थन दिया था। जब मुक्तिबोध रोग शैय्या पर थे तो उनका एक पोर्ट्रेट बनाया था, जो *चाँद का मुँह टेढ़ा है* में प्रकाशित हुआ था। जब मैंने *कल्पना* के संचालक-सम्पादक बदरीविशाल पित्ती को प्रणति देने के लिए *बदरीविशाल* नाम से एक पुस्तक सम्पादित की तो, उन्होंने *कल्पना* और बदरीविशाल जी के योगदान पर एक टिप्पणी लिखकर दी। उनका कामकाज वास्तव में विपुल है, पर, जैसा कि हम पहले भी उल्लेख कर आये हैं वह सब अपनी विपुलता का कोई भार नहीं डालता— उसमें एक प्रशांति है। कोई हड़बड़ी नहीं। गहराई है। उनका काम भी मानो एकांत कोने में रहना पसंद करता है। इसलिए भी उनके योगदान के कई पहलुओं पर लोगों का ध्यान जाना बाक़ी है।

राम कुमार के जीवनकाल में ही द *जर्नी विदिन* नाम से गगन गिल के सम्पादन में वढ़ेरा आर्ट गैलरी ने उनकी कला पर अंग्रेज़ी में एक सचित्र पुस्तक प्रकाशित की थी, जिसमें रिचर्ड बार्थोलोमिव, शामलाल, निर्मल वर्मा, रंजीत होसकोटे के लेख हैं। स्वामीनाथन जैसे कला-पारखी, चिंतक और चित्रकार स्वामीनाथन की टिप्पणियाँ हैं। एक लेख रामकुमार की कहानियों पर इन पंक्तियों के लेखक का भी है। इसमें उनकी कला को लेकर बहुतेरे संदर्भ भी हैं। रामकुमार की डायरियाँ, और टिप्पणियाँ भी हैं। ज़ाहिर है ये बहुत काम की हैं। अभी उनके विपुल योगदान पर बहुत कुछ किया और लिखा जाना बाक़ी है।

रामकुमार का 15-16 बैठकों में मैंने एक इंटरव्यू किया था *पूर्वग्रह* के लिए। तब रामकुमार की कला में धूसर रंगों की जगह लाल, हरा, पीला आना शुरू हुए थे। मैंने कहा, लगता है अब आपकी कला से 'अवसाद' पक्ष जा रहा है।' वह छूटते ही बोले, 'लाल रंग भी उदास हो सकता है।' हाँ, कला को, कला-कृतियों को देखने के बहुतेरे कोण हो सकते हैं। उनकी कृतियों के लिए भी नये कोणों की दरकार अभी और होगी।